श्री शंकराचार्यकृत

सौन्दर्यलहरी

४१ श्लोकों की हिन्दी-टीका

ईश्वर-स्वरूप श्री गुरुदेव जी
द्वारा
कथित अर्थ का संकलन

गुरु-कृपावगाहिनी
प्रभा देवी

दो शब्द

स्वनाम धन्य हमारे प्रातः स्मरणीय गुरुदेव श्री ईश्वर-स्वरूप जी (श्री लक्ष्मणजी महाराज) ने ई० सन् १६७७ में सामुदायिक रूप में हमें श्री शंकराचार्य कृत सौन्दर्य लहरी को कश्मीरी भाषा में पढ़ाया था। सभी शिष्य-जन गुरुदेव के मुखारविन्द से निकले हुए इन श्लोकों को अर्थ दत्त-चित्त होकर सुनते थे। श्लोकों का अर्थ अन्य टीकाकारों ने स्थूल श्रृंगारिक रूप को सम्मुख रखकर ही किया है। किन्तु गुरुदेव ने अभ्यास-परक दृष्टि को लेकर उन्ही श्लोकों का अर्थ रहस्यार्थ को समक्ष रखकर किया है। मैंने उन्हीं दिनों इन इकतालीस श्लोकों का अर्थ अपनी बाल-सुलभ मति के अनुसार हिन्दी-भाषा में करके सुरक्षित रखने के उद्देश्य से किया। गुरुदेव के कश्मीरी भाषा में कहे गये व्याख्यान हिन्दी-प्रेमियों के समक्ष भी पहुँचे, इसी अभिप्राय से इन श्लोकों का हिन्दी अनुवाद किया गया है। कई विघ्नों के उपस्थित होने के हेतु सम्पूर्ण सौन्दर्य-लहरी का अर्थ गुरु-देव न कर पाये। इन इकतालीस श्लोकों में ही मानों गागर में सागर भरा है। सहृदेव पाठक-जन गुरु-प्रसाद समझकर इन श्लोकों को पढ़ें, अभ्यास करें और शक्ति के महत्त्व को समझने का प्रयास करें। इसी उद्देश्य से यह पुस्तिका उनके समक्ष आ रही है।

मैं हृदय में श्री ज्ञानी जी बादाम को गुरुवर्यों की ओर से शुभाशीर्वाद दे रही हूँ इन्होंने इस पुस्तिका को सुरक्षित रखने के हेतु मुद्रण कार्य का बीडा अपने कार्यालय के द्वारा करवाया। प्रभु इन्हें सानन्द रखे।

गुरु-कृपावगाहिनी
प्रभा देवी

अथ सौन्दर्य-लहरी

शिवः शक्तया युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ।
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्चादिभिरपि
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुरायः प्रभवति ॥१॥

अर्थ : भगवान शंकर, शक्ति-संपन्न होकर ही जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा संहार करने का सामर्थ्य रखते हैं। यदि यह देव-शिव शक्ति से युक्त न हों तो यह जड-तुल्य अस्पन्दित होंगे। अतः आपकी आराधना तो नारायण, शिव, ब्रह्मा जी आदि देवता करते हैं। पुण्य-हीन-पापी व्यक्ति भला आपको प्रणाम या स्तुति करने का साहस किस बल-बूते पर कर सकते हैं।

तनीयांसं पांसुं तव चरण पङ्केसहभवं
विरिञ्चः संचिन्वन्विरचयति लोकानऽविकलम।
वहत्येनं शौरिः कथमपि सहस्रेण शिरसां
हरः संक्षुद्यैनं भजति भसितोद्धूलन विधिम्॥२॥

अर्थ : हे देवी! आपके चरण-कमलों से उत्पन्न, अत्यल्प सूक्ष्म धूलि को इकट्ठा करके ब्रह्माजी स्वतन्त्र होकर सभी लोकों की रचना करते हैं। इन्हीं फूलों की सुगन्धि को नारायण न मालूम कैसे शेषनाग के रूप में अपने हजार सिरों में धारण करते हैं। भगवान् शंकर सम्पूर्ण ब्रह्मांड को भस्म करके उसी धूलि को मलने से अपने को कृतकृत्य-धन्य समझते हैं।

अविद्यानामऽन्तस्मिरमिहिरोद्धीपनकरी
जडानां चैतन्यस्तवकमकरन्दस्रुतिजरी।
दरिद्राणां चिन्तामणिगुणनिका जन्म जलधौ
निमग्नानां दंष्ट्रा मुररिपुवराहस्य भवती॥३॥

अर्थ : (हे देवी आप) अविद्या का अन्त करने वाली हैं। आप अत्यन्त

घने अज्ञान रूपी अन्धकार को समाप्त करके, ज्ञान रूपी सूर्य को चमकाने वाली हैं। मोटी बुद्धि वाले मूर्ख भक्तों के लिए चैतन्य रूपी फूलों के गुलदस्ते से टपकने वाले आनन्द रूपी शहद को बहाने वाली नदी हैं। दरिद्र – जिसने जीवन भर आपका नाम तक न लिया हो – उसके लिए आप चिन्तना रूपी चिन्तामणि रत्नों की माला ही बनी हैं। आवागमन रूपी समुद्र में डूबे हुए भक्तों के लिए 'मुर' नामक राक्षस को मारने वाले नारायण जो वराह अवतार के रूप में प्रकट हुए थे, उस वराह की दाढ़ ही बनी हैं। भाव यह है– जैसे वराह रूपधारी नारायण ने पृथ्वी की रक्षा अपनी दाढ़ से की थी उसी भांति आप भी अपने भक्तों की रक्षा करती हैं।

त्वदन्यः पाणिभ्यामभयवरदो दैवतगणस्
त्वमेका नैवासि प्रकटितवराभीत्यभिनया।
भयात्रातुं दातुं फलमपि च वाच्छासमधिकं
शरण्ये लोकानां तवहि चरणावेव निपुणौ॥४॥

अर्थ : हे लोकों को शरण देने वाली – रक्षा करने वाली देवी। आपके बिना अन्य देवता तो अपने दो हाथों से भय तथा वर देने का संकेत अपने भक्तों को करते हैं किंतु केवल आप वर तथा अभय को हाथों से दिखाकर देवताओं का अनुकरण (नकल) नहीं करतीं। ऐसा करने में तो आपके चरण ही चतुर हैं वह तो अपने भक्तों की भय से रक्षा करते हैं और भक्त की मांगी हुई अभिलाषा से भी अधिक फल देने का सामर्थ्य रखते हैं।

हरिस्त्वामाराध्य प्रणतजनसौभाग्यजननी
पुरा नारी भूत्वा पुररिपुमपि क्षोभमनयत्।
स्मरोपि त्वां नत्वा रतिनयनलेह्येन वपुषा
मुनीनामप्यन्तः प्रभवति हि मोहाय महताम्॥५॥

अर्थ : प्रणाम करने वाले भक्तों का सौभाग्य बनी हुई आप देवी की आराधना, प्राचीनकाल में जब भगवान् नारायण ने की तो उन्होंने स्त्री का रूप धारण करके महादेव जी को भी क्षुभित किया – उनके मन को चंचल बना दिया। इसी भांति कामदेव भी (अपनी सफलता के लिए) आपको नमस्कार करके ही अपनी स्त्री रति के नेत्रों को आनन्द देने वाले

स्वरूप से युक्त होकर बड़े महान मुनियों के अन्तः करण में मोह-विषय-वासना को उत्तेजित करने में समर्थ होता है। भाव यह है– नारायण तथा कामदेव भी अपना कार्य करने में तभी सफल हुए जब उन्होंने पहले आपको प्रणाम किया था।

धनुः पौष्पं मौर्वी मधुकरमयो पंच विशिखा
वसन्तः सामन्तो मलयमरुदाऽयोधनरथः ।
तथाप्येकः सर्वं हिमगिरिसुते कामपि कृपाम-
पाङ्गात्ते लब्ध्वा जगदिदमनङ्गो विजयते ॥६॥

अर्थ : हे पर्वत-पुत्री! कामदेव के पास फूलों का धनुष, काले भौरों की धनुष की डोरी, (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) नाम वाले पांच तीर, वसन्त-ऋतु मन्त्री, मलय-पर्वत की महकती हुई सुखद वायु युद्ध का रथ है। इतनी सामग्री के होते हुए भी वास्तव में आपकी किसी अलौकिक कृपा-दृष्टि को प्राप्त करके ही कामदेव सारे जगत् पर विजय प्राप्त करता है।।6।।

क्वणत्काञ्चिदामा करिकलभकुम्भस्तनभरा
परिक्षीणा मध्ये परिणतशरश्चन्द्रवदना ।
धनुर्बाणान्पाशं सृणिमपि दधाना करतलैः
पुरस्तादऽस्तां नः पुरमथितुराहो पुरुषिका ॥७॥

अर्थ : (हे देवी आप) शब्द करती हुई सोने की माला को धारण किए हुए हैं। आपका वक्षस्थल (छाती) छोटे हाथी के कंधों (कुम्भ) के समान सदा उन्नत (ऊँचा) उठा हुआ है। आप अपने चार हाथों में धनुष, बाण, यमपाश और माला को धारण किए हुए हैं। इस भांति आप त्रिपुरासुर को नष्ट करने वाले महादेव जी की सत्तारूपिणी शक्ति ही हैं। ऐसे स्वरूप वाली आप हमारे सम्मुख रहकर दर्शन दें।

ऊपर वर्णित श्लोक में देवी के साकार रूप का वर्णन सांसारिक जनों के लिए किया है। योगीजन तो इन पदों का अर्थ यह करते हैं: – हे कुंडलिनी शक्ति आप योग सम्बन्धी दश नादों की माला को धारण करती हैं। आप अर्न्तमुखदशा में ठहरी हुई ऊर्ध्वकुंडलिनी के स्वरूप में ठहरती

हैं। अतः आप से प्रार्थना है आप अपने प्रिय भक्तों को योग में सफलता प्रदान करें।

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपवाटी परिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे ।
शिवाकारे मंचे परमशिव पर्यङ्कनिलयां
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचनचिदानन्दलहरीम् ॥८॥

अर्थ : अमृत-पूर्ण समुद्र में कल्प-वृक्ष की वाटिका-बगीचे से व्याप्त यानी सुन्दर बने हुए रत्न जटित द्वीप-जजीरे में कदम्ब-वृक्षों से युक्त, चिन्तामणि रत्न रूपी घर में शिव नामक मंच (चारपाई) पर परम-शिव का बिछौना बनाकर आप विश्राम ले रही हैं। ऐसी चिदानन्द की लहर (उमेग) बनी हुई आप की सेवा कोई विरला भाग्यवान् भक्त ही करता है।

इस श्लोक में कवि ने अर्न्तमुख अवस्था का वर्णन किया है। साधक को अनथक अभ्यास करने पर सम्पूर्ण विश्व, आनन्द से व्याप्त अनुभावित होता है। द्वैत का लेष-मात्र भी नहीं रहता।

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहस्थितं
स्वाधिष्ठाने हृदि मस्तमाकाशमुपरि। स्त
मनोपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथं
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसि॥९॥

अर्थ : (हे देवी! आप) पृथिवी को मूलाधार – चतुर्दल में काटकर - रखकर, जल-तत्त्व को मणिपुर-चक्र-नाभिस्थान के दशदल में रखकर, स्वाधिष्ठान-चक्र में ठहरी हुई अग्नि को षड्दल में स्थापित करके, वायु को हृदय-द्वादशदल में अनुभव करके, आकाश को ऊपर-विशुद्ध चक्र में ठहराकर फिर मन को भ्रूमध्य - द्विदल में अनुभव करती हैं। इस रीति से आप सम्पूर्ण कुल-मार्ग यानी चक्रों का उल्लंघन करके सहस्रार रूपी कमल में अपने पति शिव के साथ एकान्त में जाकर विहार करती हैं। स्वात्मानन्द का अनुभव कराके सम्पूर्ण ब्रह्मांड को अमृतरस से युक्त बना देती हैं।

ऊपर वर्णित श्लोक में कवि ने कुंडलिनी शक्ति के उत्थान की ओर संकेत करते हुए समाधि की चरम-अवस्था का वर्णन किया है।

सुधाधारासारैश्चरणयुगलान्तर्विगलितैः
प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नाटामहसा। य
अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयं
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि॥१०॥

अर्थ : – (हे देवी) आपके प्रकाश और विमर्श रूपी चरणों के जोड़े से बहे हुए अमृत की धारासार - मूसलाधार वर्षा से आप सम्पूर्ण ब्रह्मांड का सिंचन करती हैं या षट्चक्र के विस्तार को अमृतमय बना देती हैं। इस के पश्चात् आप अपने आनन्द-रस के तेज यानी बहाव से सांप के रूप में साढ़े तीन घेरों में मुडी हुई अपनी कुंडलिनी की भूमि को स्वरूपमय बनाकर फिर कुल-कुंड नाम वाले मूलाधार के खाली स्थान में जाकर सो जाती हैं– विश्राम करती हैं।

इस ऊपर वर्णित श्लोक में कवि ने ऊर्ध्व कुंडलिनीपद का चित्र खींचा है। श्रेष्ठ योगिजन ही इन अवस्थाओं का अनुभव करते हैं।

चतुर्भिः श्रीकण्ठैः शिवयुवतिभिः पञ्चभिरप्यो वो
प्रभिन्नाभिः शम्भोर्नवभिरिति मूलप्रकृतिभिः ।
त्रयश्चत्वारिंशद्वसुदलकलाम्रात्रिवलय-
त्रिरेखाभिः सार्धं तव शरणकोणाः परिणताः ॥११॥

शैवी त्रिकमतानुसार इस श्रीचक्र की त्रिकोण रूप वाली चार लकीरें नीचे से ऊपर की ओर खेंची हुई शिव-संबन्धि - परा, परापरा, अपरा और परातीता मानी गई हैं। ऊपर से नीचे की ओर खेंची हुई पाँच लकीरें-सृष्टि, स्थिति, संहार, तुर्य और भासा-शक्ति को प्रकट करती हैं। इस भांति कुल नव होकर मूल प्रकृति से जुड़ा होकर शिव माना गया है। इसके अतिरिक्त इन तिकोनों के इर्द-गिर्द खाली स्थान तिरतालीस (४३) हैं। उनको छत्तीस (३६) तत्त्व और सात प्रमाता माना गया है। इस चक्र के बाहिर आठ कमल वे पत्ते बने हैं जो प्रमाता की आठ कलाओं को सूचित करती हैं। तीन गोलाकार लकीरें भव, अभव और अतिभव या जाग्रत, स्वप्न और

सुषप्ति को सूचित करती हैं। अन्य तीन रेखायें- नर, शक्ति और शिव व्याप्ति को दर्शाती हैं। इस भांति इन तीन रेखाओं से युक्त यह श्रीचक्र भक्तों को शरण देने वाला होकर जगत् में प्रवर्तित हुआ है।

त्वदीयं सौन्दर्यं तुहिनगिरिकन्ये तुलयितुं
कवीन्द्राः कल्पन्ते कथमपि विरिञ्चिः प्रभृतयः।
यदालोक्यौत्सुक्यादमरललना यान्ति मनसा
तपोभिर्दुष्प्रापामपि गिरिशसायुज्यपदवीम्॥१२॥

अर्थ : हे हिमालय की पुत्री गिरिजा। न मालूम किस साहस के सहारे ब्रह्मा आदि ज्ञानवान् आपकी सुन्दरता की तुलना कर पाते हैं। इधर देवताओं की स्त्रियां तो आपकी सुन्दरता का मन ही मन विचार करने से ही, महादेव के साथ सायुज्य-संबंध को प्राप्त करती हैं। यह सायुज्य संबंध तो तपस्याओं के करने पर भी अति कठिनता से प्राप्त होता है।

नोट : संबंध तीन प्रकार का माना गया है– सालोक, सायुज्य और सामीप्य। माता पुत्र का सालोक, दूध पानी का सायुज्य और पति-पत्नी का सामीप्य। जैसे दूध में पानी मिलाने से वह जल फिर अलग नहीं होता वैसे ही शिव के साथ सायुज्य संबंध हो जाने से जीव फिर अलग न होकर मुक्त हो जाता है।

नरं वर्षीयांसं नयनविरसं नर्मसु जडं
तवापाङ्गा लोके पतितमनुधावन्ति शतशः।
गलद्वेणीबन्धाः कुचकलशविस्रस्तसिचया
हठात्त्रुटयत्काञ्चो विगलितदुकूला युवतयः॥१३॥

अर्थः मनुष्य बूढ़ा हो गया हो, नेत्रों की ज्योति खो बैठा हो, सभी अंग ढीले हो गये हों किंतु आपकी दया-पूर्ण दृष्टि का पात्र बना हो ऐसे अभ्यास के लिए बेकार बने हुए आप के परम भक्त को आप दयालु बनकर उसकी मानसिक वृत्तियों को अनायास ही एकाग्र बना देती हैं। उसके ज्ञान-क्रिया के सभी आवरणों (विघ्नों) को हटा देती हैं। उसके जीव-संबंधी बन्धनों को काटकर हठशनिपात के द्वारा, आणव मायीय तथा

क्ति

कार्ममल के वस्त्र रूपी आवरण (पर्दे) को दूर फेंककर उसे स्वयं एकाग्र बना देती हैं।

क्षितौ षट्पञ्चाशद्विसमधिकपञ्चाशदुदके
हुताशे द्वाषष्टिश्चचतुरधिकपञ्चाशदनिले।
दिवि द्विषट्त्रिंशन्मनसि च चतुः षष्टिरिति ये खा
मयूरवास्तेषामप्युपरि तव पादाम्बुजयुगम्॥१४॥

अर्थ : पृथिवी तत्त्व-मूलाधार चक्र में छप्पन (५६) किरणें, जल तत्त्व-मणिपुर चक्र में बावन (५२) किरणें, अग्नि तत्त्व-स्वाधिष्ठान चक्र में बासठ (६२) किरणें, वायु तत्त्व-अनाहत चक्र में चौउवन (५४) किरणें, आकाश तत्त्व-विशुद्ध चक्र में बहत्तर (७२) किरणें और मन-आज्ञा चक्र में चौंसठ (६४) किरणें, जो ठहरी हैं उनके ऊपर आपके चरण-कमलों का युगल (जोड़ा) अवस्थित है।

कवि ने ऊपर-वर्णित श्लोक में काल-कलना से विलग तथा श्रेष्ठ संवित् देवी को सिद्ध किया है। ऊपर के सभी अंक मिलाकर ३६० बनते हैं। इधर एक वर्ष में दिन तीन सौ साठ होते हैं। अतः देवी की कलना काल-चक्र से उच्च मानी गई है। तभी तो उसे अकालकलित भी कहते हैं।

शरज्जोत्सनाशुभ्रां शशियुतजटाजूटमुकुटां
नरत्रासत्राणस्फटिकधुटिका पुस्तक कराम्।
सकृन्नत्वा न त्वां कथमिव सतां सन्निदधते
मधुक्षीरद्राक्षामधुरिम धुरीणा मणितयः॥१५॥

अर्थ : (हे देवी! आपका स्वरूप) शरत् काल के चन्द्रमा की चाँदनी की भान्ति निर्मल है। आपने अपने बालों को मुकुट के रूप में बांधकर चन्द्रमा से शोभित किया है। आप वर, अभय, स्फटिक रत्नों की माला और पुस्तक को अपने चारों हाथों में धारण किये हुए हैं। जिन भक्त सज्जनों ने आपके ऊपर वर्णित आकृति से युक्त रूप का एक बार भी ध्यान किया हो या इस रूप के सम्मुख नमन किया हो उनकी कविता शहद, दूध तथा अंगूर के समान मधुरता से सरस बनी हुई क्यों न होगी।

भाव यह है जो देवी के अनन्य उपासक होते हैं उनकी कविता सरस, मन को भाने वाली तथा श्रेष्ठगुणों से संपन्न होती है।

कविन्द्राणां चेतः कमलवनबालातपरूचिं
भजन्ते ये सन्तः कतिचिदरूणामेव भवतीम् ।
विरिञ्चिप्रेयस्यास्तरलतरश्रृंङ्गरलहरी
गभीराभिर्वाग्भिर्विदधति सतां रञ्जनममी ॥१६॥

अर्थ : (हे देवी आप) शिरोमणी कवियों के मन रूपी कमल-वन को विकसित करने के लिए बाल-सूर्य के समान दीप्तिमयी है। (उदय होते हुए बाल-सूर्य की) लालिमा से युक्त अरूण रूप वाली आपका ध्यान जो विरला सन्त करता है उन्हें ब्रह्मा जी प्रिया सरस्वती के समान, अलंकारों से चंचल बनी हुई श्रृंगार-रस से भरपूर कविता का बहाव अनायास प्रकट होता है। जिस कविता को सुनाकर वे कविवर सन्तों की सभाओं को हर्षित बना देते हैं।

सवित्रीभिर्वाचां शशिमणिशिलाभङ्गरूचिभि-
र्वशिन्याद्याभिस्त्वां सह जनत्रि संचिन्तयति यः।
स कर्त्ता काव्यानां भवनि कविता भङ्गिसुभगैः
नवोभिर्वाग्देवीवदनकमलाभोदमधुरैः॥१७॥

अर्थ : हे माता जो आपका भक्त, आठ शक्तियों (वशिनी, कामेश्वरी, सर्वेश्वरी, कौलिनी, मोदिनी, जयिनी, अरुणा और विमला) सहित आपका ध्यान करता है वह कविता को बनाने वाला श्रेष्ठ कवि बनता है। ये आठ वशिनी आदि शक्तियाँ वाणियों में से उत्पन्न करती हैं जैसे चंद्रकांत रत्न जल को अनयक रूप से बहाने की शक्ति रखता है। इसी भांति देवी का भक्त जब आपकी उपासना करता है तो उसकी कविता की रचना सरस तथा सरस्वती देवी के मुख रूपी कमल की सुगन्धि से युक्त हृदय को आकर्षित करने वाली होती है। (भाव यह है कि उस कविता के पढ़ने से ऐसा अनुभव होता है मानो स्वयं देवी सरस्वती ने ही इस कविता की रचना की है।)

तनुच्छायाभिस्ते तरुणतरणिश्रीसरणिभिर्दि-
वं सर्वामुर्वीमरुणिमनिमग्नां स्मरति यः।
भवन्त्यस्य त्रस्य द्वन हरिणशालीन नयनाः
सहोर्वश्या वश्याः कतिकति न गीर्वाणगणिकाः॥१८॥

अर्थ : (हे देवी!) बाल-सूर्य की तेजस्वी किरणों के समान आपकी कोमल तथा सूक्ष्म छाया के द्वारा, जो व्यक्ति आकाश तथा सम्पूर्ण पृथिवी को (आपके) लाल रंग में डूबी हुई देखे- इस भांति आपका ध्यान करे, उसकी मानसिक वृत्तियाँ स्वयं बिना आयास के ही इन्द्रियों सहित वश में हो जाती है फिर भला इन्द्रियों की वृत्तियाँ उसके वश में क्यों न होगी।

भाव यह है- ऐसे भक्त का मन एकदम एकाग्र हो जाता है। मन के एकाग्र हो जाने से इन्द्रियों की वृत्तियाँ भी वश में हो जाती है।

मुखं बिन्दुं कृत्वा कुचयुगमधस्तस्य तदधो
ह कारार्ध ध्यायेत् हरमहिषि ते मन्मथकलाम्।
स सद्यः संक्षोभं नयति वनिता इत्यतिलघु
त्रिलोकीमप्याशु भ्रमयति रविन्दुस्तनयुगाम्॥१९॥

अर्थ : हे महादेव की महारानी (शक्ति) आपके मुख को बिन्दु (प्रकाश) मानकर, वक्षस्थल छाती को ज्ञान तथा क्रिया समझकर, उसके नीचे हकारार्ध-विसर्ग (:) को शिव तथा शक्ति का चिह्न मानकर, आपके काम-कला-इच्छा-शक्ति का जो भक्त साधक ध्यान करता है, वह उसी क्षण इन्द्रिय-वृत्तियों को क्षुभित-अन्तर्मुख बना देता है। ऐसा करना तो उसके लिए सामान्य कार्य है। कारण यह है कि वह तो सूर्य-चन्द्रमा-प्राण-अपान से युक्त त्रिलोकी-जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति दशाओं को भी भ्रमित तुर्य रस से विकसित बना देता है।

किरन्तीमङ्गेभ्यः किरणन्तिकुरम्बामृतरसं नि
हृदि त्वामाधत्ते हिमकरशिलामूर्तिमिवयः।
स सर्पाणां दर्पं शमयति शकुन्ताधिप्र इव प
ज्वरप्लुष्टं द्दष्टया सुखयति सुधासारसिरया॥२०॥

अर्थ : हे माता। आपका स्वरूप तो अपने प्रकाश रूपी किरणों से

अपने

चन्द्र-कांत रत्न की भान्ति अमृत-रस को बहाता है, ऐसे आपके स्वरूप को जो साधक-व्यक्ति के हृदय में ध्यान करे वह गरूड़ पक्षी की भांति, सांपों के विष फैलाने के अभिमान को शांतकर देता है। अपनी अमृत-पूर्ण-नदी के तुल्य दृष्टि से ज्वर (बुखार) से पीड़ित बने हुए रोगी को ज्वर के ताप से मुक्त करके नीरोग बना देता है।

तडिल्लेखातन्वीं तपनशशिवैश्वानरमयीं
निषण्णां षण्णामुप्युपरि कमलानां तव कलाम्।
महापद्माटव्यां मृदितमलमायेन मनसा
महान्तः पश्यन्तो दधति परमाह्लदलहरीम्॥२१॥

अर्थ : हे माता, आपकी कला-आपका साक्षात्कार बिजली की चमक की भांति सूक्ष्म है – देखते देखते ही ओझल होने वाला होता है। यह रूप सूर्य, चंद्र तथा अग्नि से युक्त है। इनको हम प्रमाण, प्रमेय तथा प्रमाता भी कह सकते हैं। यही आपका रूप षट्चक्र रूपी कमलों के ऊपर विराजमान है। इसी कला (रूप) को महापुरुष सन्त-जन षट्चक्र रूपी महान कमलों के सरोवर में अपने मानसिक कमल-भेद प्रथा को धोकर (हटाकर) देखते देखते परमानन्द रूपी लहरों में लीन हो जाते हैं। इस भांति वे स्वरूप समावेश के आनन्द का अनुभव करते हैं।

भवानि त्वं दासे मयि वितर दृष्टिं सकरूणा-
मिति स्तोतुं वाञ्छन्कथयति भवानि त्वमितियः ।
तदैव त्वं तस्मै दिशसि निजसायुज्यपदवीं
मुकुन्द ब्रह्मेन्द्रस्फुटमुकुटनीराजितपदाम् ॥२२॥

अर्थ : हे भव-शंकर की पत्नी भवानि। आप मुझ दास को करूणामयी दृष्टि से अनुगृहीत करें। इस भांति जो इस (भवानि त्वं दासे) श्लोक को आप की स्तुति समझकर पढ़े, उसे आप तत्क्षण अपनी सायुज्य पद्धवी प्रदान करती हैं। जो पद्धवि नारायण, ब्रह्मा तथा इन्द्र के मुकुटों से शोभित बनी हुई है।

भाव यह है–आपकी सायुज्य पद्धवि को प्राप्त करने के लिए नारायण आदि देवता मुकुट सहित आपके सम्मुख नमन करते हैं। अतः उनके

मुकुटों की चमक से यह सायुज्य पद्धवि सदा सुशोभित बनी रहती है।

त्वया हृत्वा वामं वपुरपरितृप्तेन मनसा
शरीरार्धं शंभोरपरमपि शङ्के हृतमभूत्।
तथाहि त्वद्रूमं सकलमरूणाभं त्रिनयनं
कुचाभ्यामानम्रं कुटिलशशिचूडालमुकुटाम्॥२३॥

अर्थ : (हे माता) आपने भगवान् शंकर के शरीर का वाम भाग हरण किया है– उस पर अधिकार जमा लिया है। इतना करके भी आप अतृप्त ही है। मुझे शंका हो रही है – आप भगवान् शंकर के दूसरे भाग पर भी अधिकार जमाना चाहती हैं। इस का प्रमाण हमें आपके अर्धनारीश्वर चित्र से प्रत्यक्ष सिद्ध होता है। उसमें आपका पूर्णस्वरूप लाल रंग का ही है। साथ ही तीन नेत्र, झुका हुआ वक्षस्थल, चंद्रकला के विलोम जटाजूटों से युक्त मुकुट सुशोभित होता है।

भाव यह है--अर्धनारीश्वर चित्र में भगवान् शंकर का स्वरूप शक्ति के स्वरूप वाला ही होता है।

जगत्सूते धाता हरिरवति रूद्रः क्षपयते रु
तिरस्कुर्वन्नतत्स्वमपि कुपुरीशः स्थगयति व
सदापूर्वः सर्वं तदिदमनुगृह्णाति च शिव।
स्तवाज्ञामालम्ब्य क्षणचलितयो र्भ्रूलतिकये॥२४॥ यो

अर्थ : ब्रह्मा जी जगत् को उत्पन्न करते हैं। नारायण इसकी रक्षा करते हैं और रूद्र इसका नाश करते हैं। इस भांति जगत् का निरादर करते हुए रूद्र अपने वास्तविक स्वरूप को पिदान शक्ति के द्वारा) ढांपते है। (इस रूप को देखकर सदाशिव ~~आप~~ भोंहों की स्फूर्तिमय रूपी लता के संकेत मात्र से आपकी आज्ञा का पालन करते हुए इस सम्पूर्ण जगत् का पुनः अनुग्रह करते हैं। इस जगत् को स्वरूपमय बनाते हैं।

रु
अपनी

त्रयाणां देवानां त्रिगुणजनितानामपि शिवे
भवेत्पूजा पूजा तव चरणयोर्या विरचिता।
तथाहि त्वत्पादोद्वहन मणिपीठस्य निकटे
स्थिता ह्येते शश्वन्मुकुलित करोतंसमुकुटाः॥२५॥

अर्थ : हे पार्वती। आप त्रिगुणात्मक (सत्तोगुण, रजोगुण और तमोगुण) स्वरूप से उत्पन्न तीन देवता नारायण, ब्रह्मा और महादेव की पूजा भी आपके चरणों की पूजा करने से ही सिद्ध होती है। इस कथन की पुष्टि करते हैं– (देखिये) यह सभी देवता आपके रत्न से जड़े हुए पाद-पीठ के सामने अंजलि बांधे-हाथ जोड़े हुए मुकुट सहित झुकाये हुए सिरों वाले होते हैं। जो आपके भक्त आपके चरणों की पूजा करते हैं वह फूल स्वतः खिसकते हुए उन देवताओं के ऊपर गिरते हैं। अतः देवी के द्वारा वे भक्त देवताओं की पूजा करने का भी फल पाते हैं।

विरिञ्चिः पंचत्वं व्रजति हरिराप्नोति विरतिं
विनाशं कीनाशो भजति धनदो याति निधनम्।
वितन्द्राः माहेन्द्रो वितरति संभीलति दृशां
महासंहारेऽस्मिन्विहरति सति त्वत्पतिरसौ॥२६॥

अर्थ : (हे देवी) आपके यह पति (महादेवीजी) इस महासंहार के समय तांडव नृत्य करते हुए जब आवेश में आकर विहार करते हैं तो ब्रह्मा जी मृत्यु को प्राप्त होते हैं। नारायण वैरागी बनकर रक्षा करने का काम छोड़ देते हैं। महाकाल विनाश को प्राप्त होता है। कुबेर जी मृत्यु का ग्रास बनते हैं और इन्द्र देवता के सजग नेत्र भी इस भयंकर प्रलयकाल में बन्द हो जाते हैं।

सुधामप्यास्वाद्य प्रतिभयजरामृत्युहरणीं
विपद्यन्ते विश्वे विधिशतमखाद्या दिविषदः।
करालं यत्क्ष्वेलं कवलितवतः कालकलना
न शंभोस्तनमूलं तव जननि ताटङ्कमहिमा॥२७॥

अर्थ : हे माता। प्रत्येक प्रकार का भय, बुढ़ापा और मृत्यु को दूर भगाने वाले अमृत को पीकर भी समय के आने पर इन्द्र आदि देवता मृत्यु का ग्रास बनते हैं। किंतु भयंकर कालकूट विष को पीकर भी महादेव जी अमर बने रहे। कालकूट विष तो क्षण-मात्र में ग्रास करने वाला होता है किन्तु वह महादेव जी का अन्त करने में असफल रहा। इस का मुख्य कारण आप के ताटंङ्क की महिमा थी।

भाव यह है–जिस समय शंकर ने काल-कूट विष का पान किया, उस समय देवी के कानों में सुहाग का चिह्न ताटंक (डिजहरू) पहना हुआ था। उसी की महिमा से शंकर जी को विष-व्याप्त न हुआ। यह आपके ताटङ्क का प्रभाव था।

जपो जल्पः शिल्पं सकलमपि मुद्राविरचनं
गतिः प्रादक्षिण्य क्रमणम शनाद्याहुति विधिः।
प्रणामः संवेशः सुखमखिलमात्मार्पणदशां
सपर्यापर्यायः तव भवतु यन्मे विलसितम्॥२८॥

अर्थ : भक्त भगवती से प्रार्थना करता है : – मेरी व्यर्थ बातें आपकी दया से जप का फल प्रदान करें। सभी शिल्प (हुनर) योग-मुद्रा में परिणत (तबदील) हो। मेरा चलना प्रदक्षिणा का रूप धारण करे। मेरा भोजन देवताओं वे प्रति आहुति बने। मेरा सोना आपको प्रणाम करने का फल दे और प्रत्येक प्रकार का लौकिक सुख आत्मा में ही लय बनने का रूप धारण करे। इस भांति विकसित बनी हुई मेरी दिन-चर्या आपकी पूजा का ही पर्याय (दूसरा नाम) बने।

भाव यह है–आपकी अहेतुकी दया से मेरी दिन-चर्या आपकी पूजा करने का फल प्रदान करे।

ददाने दीनेभ्यः श्रियमनिशमात्मानुसद्दशी-
ममन्दं सौन्दर्यस्तबकमकरन्दं विकरति।
तवास्मिन्मन्दारस्त वकसुभगेयातु चरणैः
निमज्जन्मज्जीवः करणचरणैः षट्चरणताम्॥२९॥

अर्थ : हे देवी ! आप दीन-जनों को अपने समान ही अपरिमित सौन्दर्य रूपी गुच्छों से बहते हुए पुष्परस के समान बहाने वाली लक्ष्मी अधिक मात्रा में देती हैं– आपका धनहीन दीन भक्त आपकी कृपा से धनवान बनता है। मेरी इच्छा है– मेरी आत्मा आपके इसी मन्दार वृक्ष के फूलों के गुच्छे पर अपनी छैः इन्द्रियों (पाँच ज्ञानेन्द्रिय और मन) सहित षट्पद (भौंरे) का रूप धारण करके इसी में मंडराता रहे। सदा आपके आनन्दरस का अनुभव करता रहे।

किरीटं वैरिञ्च्यं परिहर पुरः कैटभभिदः
कठोरे कोटीरे स्खलसि जहि जृम्भारिमुकुटम्
प्रणम्रेष्वेतेषु प्रसभमुपयातस्य भवनं
भवस्याभ्युत्थाने तव परिजनोक्तिर्विजयते॥३०॥

अर्थ : इस श्लोक में भगवती के भवन में अकस्मात् भगवान शंकर के आ जाने पर देवी की दशा का वर्णन किया गया है। साथ ही देवी की सहेलियों की उक्ति (बातचीत) को भी श्रेष्ठता दी है :–

हे देवी! आपके भवन में अकस्मात् भगवान् शंकर के आने पर आपकी सहेलियों की उक्ति की सदा जय हो। वह आपको सचेत करती हुई कहती हैं– ब्रह्माजी (जो आपके चरणों में सिर झुकाये बैठे हैं) के मुकुट को संभालते हुए चलिये। इसके आगे नारायण का मुकुट, जो बहुत ही (रत्न-जटित होने से) ठोस है, उस पर यदि आप बिना देखे चलेंगी तो आप फिसल जायेंगी। अतः आप ध्यान देकर चलें। इन्द्र के मुकुट को भी एक ओर रखकर चलें। इस भाँति यह देवता जो आपको प्रणाम करने आये हैं, इनको देखते हुए शंकर भगवान् की अगुवाई (स्वागत) करिये। इस प्रकार आपके प्रति सहेलियों के कथन की जय हो।

चतुःषष्टया तन्त्रैः सकलमभिसन्धाय भुवनं
स्थितस्तत्तत्सिद्धिप्रसवपरतन्त्रैः पशुपतिः।
पुनस्त्वन्निर्बन्धादऽखिलपुरुषार्थैकघटनात्
स्वतन्त्रं ते तन्त्रं क्षितितलमऽ वातीतरदिदम्॥३१॥

अर्थ : अनेकों मनचाही सिद्धियों को प्रदान करने वाले चौंसठ (६४) अभेद तन्त्रों के द्वारा सभी शास्त्रों का अवलोकन करके महादेवजी स्वस्थ होकर अपने आत्मानन्द में विराजमान हैं। किन्तु इतने विशाल साहित्य से जगत् का उद्धार होते न देखकर देवी के अनुरोध के वशीभूत बनकर आपने मालिनी-विजय तन्त्र का निर्माण किया। यह तन्त्र पुरुषार्थ का एकमात्र आश्रय और मोक्ष प्रदान करने वाला है। सत्य तो यही है कि आप देवी ने ही पृथ्वी पर लोगों के कल्याण के लिए मालिनी विजय तन्त्र को प्रकट किया।

शिवः शक्तिः कामः क्षितिरथ रविः शीतकिरणः
स्मरो हंसः शक्रस्तदनु च परामारहरयः।
अमी हृल्लेखाभिस्तिसृभिखसानेषु घटिता रव
भजन्ते वर्णास्ते तव जननि नामानयवताम्॥३२॥

अर्थ : इस श्लोक में देवी के मन्त्र-बीजाक्षरों का निर्णय रहस्य रूप से किया गया है– शिव-क्, शक्ति-इ, कामः-ए, क्षिति-ल्, रवि-ह, शीतकिरणः-चन्द्रमा-स्, स्मरः-क्, हंस-ह्, शक्र-इन्द्र-ल्, इसके बाद स् क् ल् परास्थ मार-क्, हरयः-ल्, इन हृल्लेखा मन्त्र (ह्रीं) को ऊपर-वर्णित बीजाक्षरों के बाद में लगाना चाहिये। इस रीति से हे माता। वे आपके अनन्य भक्त इन बीजाक्षरों से जो बीजाक्षर आपके स्वरूप को प्रकट कराते हैं उनका जप करते हैं।

स्मरं योनिं लक्ष्मीं त्रितयमदिमादौ तव मनो-
र्विधायैके नित्ये निरवधिमहाभोगरसिकाः।
जपन्ति त्वां चिन्तामणिगुणनिबद्धाक्षवलयाः
शिवाग्नौ जुह्वन्तः सुरभिघृतधाराहुतिशतैः॥३३॥

अर्थ : स्मर-क्लीं, योनि-ह्रीं, लक्ष्मीं-श्रीं, इन तीन बीजाक्षरों को आपके पूर्वश्लोक में वर्णित मन्त्रों के पहले जोड़कर कई, अवधि रहित श्रेष्ठ (मोक्ष रूपी) भोग को भोगने में रसिक बने हुए सन्त जपते हैं। इस भांति वे आपके चिन्ता मणि रूपी धागे में मन्त्र के अक्षर रूपी अपने इन्द्रियवर्ग को सुगन्धित घी की शत-धाराओं के रूप में शिवात्मक स्वात्म-अग्नि में हवण करते हैं।

शरीरं त्वं शंभोः शशिमिहिरवक्षोरुहयुगं
तवात्मानं मन्ये भगवति नवात्मानमनधम्।
अतः शेषः शेषीत्ययमुभयसाधारणतया
स्थितः सम्बन्धो वां समरसपरानन्दपदयाः॥३४॥

अर्थ : हे देवी! आप शंकर के शरीर की प्रतिमूर्ति हैं। सूर्य और चन्द्रमा आपका वक्षस्थल है। आपका स्वरूप हम नवात्मा मन्त्र रूप (ह् र् क्ष् म् ल् व् य् नूम्) शुद्ध आपका ही रूप मानते हैं। अतः यह बात सिद्ध है–

आप दोनों शक्ति तथा शिव का जो असाधारण संबंध है यह समरस भाव में ठहरे हुए परम आनन्द से परिपूर्ण है।

यहां शंकर का रूप समरस भाव में स्थित विश्वोत्तीर्ण अवस्था का द्योतक है और शक्ति का रूप परानन्द पद से युक्त विश्वमय अवस्था का वाचक है।

मनस्त्वं व्योम त्वं मरुदसि मरुदसारथिरसि
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां न-हि परम्।
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा
चिदानन्दाकारं हरमहिषि भावेन विभृषे॥३५॥

अर्थ : हे महादेव की महारानी। आप मन के रूप में प्रति प्राणी में ठहरी हैं। आप आकाश बनकर व्यापक हैं। आप प्राण-प्रद वायु हैं। आप वायु का सारथी (भड़काने वाला) अग्नि भी हैं। आप आप्यायन करने वाला जल का रूप हैं। आप पृथ्वी के रूप में सबों को धारण करती हैं। इस भांति यह सभी पंचमहाभूत आपका स्वरूप बनकर परिणाम को प्राप्त हुआ है। इतना ही नहीं आप अपने स्वरूप को जगत् के रूप में परिवर्तित करके चित्ति के आनंद का रूप विश्व बनकर व्यापक रूप होकर अवस्थित रहती हैं।

तवाज्ञाचक्रस्थं तपनशशिकोटिद्युतिधरं
परं शम्भुं वन्दे परिमिलितपार्श्वं परचिता।
यामाराध्यन्भक्तया रविशशिशुचीनामविषये
नरालोके लोको निवसति हि भालोकभवने॥३६॥

अर्थ : (हे माता) आपके आज्ञा-चक्र में स्थित सूर्य तथा चंद्रमा के करोड़ों प्रकाशों की दीप्ति को धारण करने वाले 'पर-शंभु की मैं वन्दना करता हूँ जो परचित्ति संवित् देवी के द्वारा परस्पर प्राणापान के रूप में एकमेक होकर स्थित है। जिन उपायों का अभ्यास करके भक्त सूर्य, चंद्रमा और अग्नि का न विषय बने हुए आतंक रहित स्वयं सचेत प्रकाशात्मक भवन में, जहां सम्पूर्ण जगत् ठहरा हुआ ही है, उसी में निवास करता है।

नोट : आज्ञा-चक्र का स्थान भ्रकुटि है।

विशुद्धौ ते शुद्धस्फटिकसदृशं व्योमजनकं
शिवं सेवे देवीमपि शिवसमानव्यसनिनीम्।
ययोः कान्त्या यात्या शशिकिरणसारूप्यसर-
णिर्विधूतान्तर्ध्वान्ता विलसति चकोरीव जगती॥३७॥

अर्थ : हे देवी! शुद्ध स्फटिक रत्न की भांति निर्मल आपके विशुद्ध-चक्र में ठहरे हुए शिव की मैं सेवा करता हूँ– उनका ध्यान करता हूँ। वह तो आकाश के जनक-उत्पत्तिकर्त्ता हैं। उनके साथ ही मैं देवी का भी ध्यान करता हूँ–जो देवी शिव के समान ही कर्मनिष्ठ हैं। जिन दोनों (शिव तथा शक्ति) की कान्ति, चन्द्रमा के किरणों के समान सुषुन्ना मार्ग से होकर नष्ट हुए भीतरी अन्धकार वाली है। इसे देखकर यह सम्पूर्ण जगत् चकोरी के समान उल्लसित होता है।

नोट : विशुद्ध-चक्र का स्थान कंठ है।

समुन्मीलत्संवित्कमलमकरन्दैकरसिकं
भजे हंसद्वन्द्वं किमपि महतां मानस वरम्।
यदालापादष्टादशगुणितविद्यापरिणति-
र्यदादत्ते दोषाद्गुणमखिलमद्भ्यः पय इव॥३८॥

अर्थ : (हे माता) पूर्णरूप से विकसित संवित् रूपी कमल की सुगन्धि के एकमात्र रसिक बने हुए अलौकिक दो हंसों के जोड़े (प्राणावान) का मैं भजन (अभ्यास) करता हूँ जो श्रेष्ठ सन्तों के मन रूपी सरोवर में (विशेषतया) विचरते रहते हैं। जिन प्राणापान रूपी हंसों के सुन्दर आलाप-कलरव से अठारह प्रकार की विद्याओं का फल यही मिलता है कि मनुष्य दोषों में मिले हुए गुणों को वैसे ही ग्रहण करता है जैसे राज-हंस जल में मिले हुए दूध को अलग कर देता है।

संकेत : विद्यायें अठारह प्रकार की हैं– शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द, ऋक्, यजु, साम, अथर्व, मीमांसा, न्याय, पुराण, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गंधर्वविद्या और नीतिशास्त्र।

सूचना : अनाहत-चक्र का स्थान हृदय है।

तव स्वाधिष्ठाने हुतनहमधिष्ठाय नियतं
तमीडे संवर्तं जननि महतीं तां च समयाम्।
यदालोके लोकान्दहति महति क्रोधकलिले
दयार्द्रात्वद्दृष्टिः शिशिरमुपचारं रचयति॥३९॥

अर्थ : हे माता! आपके स्वाधिष्ठान-चक्र में नियत रूप से ठहरी हुई प्रलयाग्नि की मैं स्तुति करता हूँ तथा साथ ही समया भगवती को भी मैं प्रणाम करता हूँ। महादेव का भयंकर क्रोध जिस त्रैलोकी को जला देता है उसी को आपकी दयापूर्ण दृष्टि शिशिरकाल की वर्षा के समान मरहम पट्टी का काम देती है। उस त्रैलोकी को फिर से हराभरा बना देती है।

संकेत : स्वाधिष्ठान का स्थान पेट है।

तडित्वन्तं शक्तया तिमिरपरिपन्थिस्फुरणया
त्न **स्फुरन्नानारत्रभरण परिणद्धेन्द्र धनुषम्।**
तव श्यामं मेघं कमपि मणिपूरैकशरणं
निषेवे वर्षन्तं हरमिहिरतप्तं त्रिभुवनम्॥४०॥

अर्थ : मैं, मणिपूरचक्र में ही ठहरने वाले जल रूप आपके श्याम-मेघ का सेवन-अभ्यास करता हूँ, जो अन्धकार के शत्रु-सूर्यदेवता की ज्योति से युक्त तथा बिजली की चमक से संपन्न जैसा प्रतीत होता है। विकसित बने हुए, अनेक रत्न-जटित आभरण से ढांपे गये इन्द्र-धनुष की भांति दिखाई देता है। इतना ही नहीं, ये मेघ महादेव रूपी सूर्य के द्वारा प्रलय-काल में तप्त त्रैलोकी को शान्त करने में वर्षा के समान शीतल बना देता है।

संकेत : मणिपूर-चक्र का स्थान नाभि है।

तवाधारे मूले सह समयया लास्यपरया
नवात्मानं वन्दे नवरसमहात्क्ताण्डवनटम्। ता
उभाभ्यामेताभ्याभुदयविधिमुद्दिश्य दयया
सनाथाभ्यां जज्ञे जनकजननीमज्जग दिदम्॥४१॥

अर्थ : (हे देवी) आपके मूलाधार चक्र में लास्य नाम वाले मनोमोहक नृत्य में लगी हुई समयाम्बा नामक शक्ति से युक्त बने हुए नव रसों से पूर्ण

महान ताण्ड-नृत्य के करने वाले नट रूप महादेव की मैं वन्दना करता हूँ। इन दोनों सनाथ (शिव तथा शक्ति) जो परस्पर आश्रित रहने वाले हैं के द्वारा यह जगत पिता तथा माता से युक्त बना है। यह दोनों शिव-शक्ति दया के वशीभूत होकर ही जगत् की सृष्टि तथा विधि अर्थात् पालना करते हैं।

संकेत : मूलाधार चक्र का स्थान मूलाधार है।

श्री ईश्वर-स्वरूप जी गुरुवर्य के द्वारा कही गई सौन्दर्य-लहरी की ४१ श्लोकों की रहस्यपूर्ण व्याख्या समाप्त हुई।